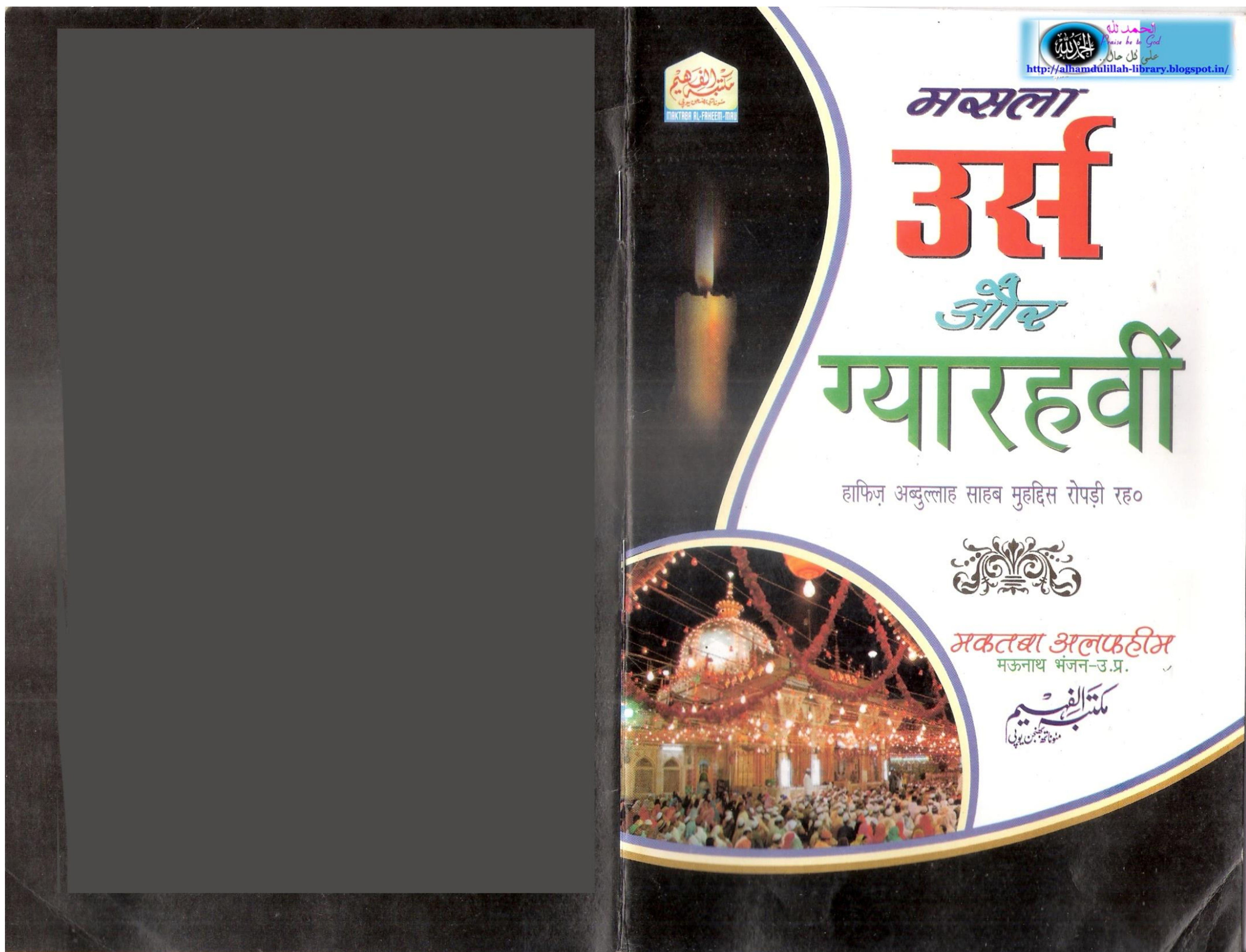

MAKTABA AL-FAHEEM-MAU
الحمد لله
Praise be to God
على كل حال
http://alhamdulillah-library.blogspot.in/
मसला
उर्स
और
ग्यारहवीं
हाफिज़ अब्दुल्लाह साहब मुहद्दिस रोपड़ी रह०
मकतबा अलफहीम
मऊनाथ भंजन-उ.प्र.
مكتبة الفهيم

अकीदत व मुहब्बत में इतनी अतिश्योक्ति से काम लिया है कि उनके नाम से मनसूब कर के ऐसी ऐसी बिदअतें और खुराफात गढ़ ली हैं जिनकी पुष्टी न तो कुरआन व हदीस से होती है और न सहाबा-ए-किराम और इमामों व मुज्तहिदीन के अमल से बल्कि यह अकीदा तौहीद ही के पूरी तरह विरूद्ध हैं।

यह पुस्तिका इस उम्मीद के साथ प्रकाशित की जा रही है कि इसे बिदआत व खुराफात की हकीकत लोगों पर स्पष्ट होगी और उस की रौशनी में अपना सुधार करेंगें।

दुआ है कि अल्लाह तआला इसे लाभकारी बनाए और लेखक और प्रकाशक को सवाब से नवाज़े।

-रफ़ीक़ अहमद सलफ़ी

मसला ग्यारहवीं

इस नाम की हमें एक पुस्तिका मिली जो मौलवी मुहम्मद शरीफ नूरी लौहोरी की लिखी हुई है। हमने उसे शुरू से आखिर तक देखा। पृष्ठ चार से ग्यारहवीं का सुबूत शुरू होता है। लिखा है कि अल्लामा इमाम शाफई रह० अपनी किताब "कुर्रतुन्नाज़िरा" के पृष्ठ ११ पर फरमाते हैं कि

"ज़िक्र याज़दहम हज़रत गौस सकलैन रज़ि० बूद इरशाद शुद कि असल याज़दहम अीं बूद कि हज़रत गौस समदानी बतारीख याज़दहम रबीउल आखिर फातिहा चहलम नबी करीम सल्ल० करदा बूदन्द। आं नियाज़ आं चुनां मकबूल व मतबूअ इफ़ताद कि दर हर माह बतारीख याज़दहम रसूल मकबूल सल्ल० मुकर्रर फरमूदंद व दीगर इत्तिबा हज़रत गौस पाक बतकलीदवे याज़दहम मे करदन्द। आखिर रफ्ता रफ्ता याज़दहम हज़रत महबूब सुब्हानी मशहूर शुद अलहाल मरदम फातिहा हज़रत शां दर याज़दहम मे कुनद व तारीख विसाल हज़रत महबूब सुब्हानी हफ्त दहम रबीउस्सानी बूद।"

अनुवादः "हज़रत महबूब सुब्हानी कुतुब रब्बानी अब्दुल कादिर जीलानी रह० की ग्यारहवीं शरीफ का ज़िक्र था। इरशाद हुआ कि ग्यारहवीं शरीफ की असल वजह यह थी कि हज़रत गौस समदानी रह० हुज़ूर पुरनूर पैगम्बरे खुदा अहमद मुजतबा सल्ल० के चालीसवें का खत्म शरीफ ग्यारह माह रबीउल आख़िर को किया करते थे। वह नियाज़ इतनी

लोकप्रिय हुई कि इसके बाद आप हर महीने की ग्यारहवीं तारीख को ही नबी-ए-करीम सल्ल० का खत्म शरीफ और नियाज़ दिलाने लगे। आखिर धीरे धीरे यही नियाज़ गौस पाक की ग्यारहवीं मशहूर हो गई। आजकल लोग आपका उर्स शरीफ भी ग्यारह तारीख को ही करते हैं यद्यपि आपकी वफात की तारीख सत्रह रबीउल आखिर है।"

मालूम हुआ कि ग्यारहवीं शरीफ असल में हुज़ूर पाक सल्ल० का उर्स मुबारक है जो गौस पाक की तरफ मन्सूब हो गया।

जवाब

पूरी पुस्तिका में यही एक रिवायत ग्यारहवीं के सुबूत में पेश की है मगर यह इतना बड़ा आरोप है कि अगर लेखक ने इससे तौबा न की तो उनके खात्मे का ज़बरदस्त खतरा है। इमाम शाफई रह० ने न कोई किताब फारसी में लिखी और न यह किताब उनकी है। इसके अलावा इमाम शाफई रह० दूसरी सदी हिजरी में हुए और शाह अब्दुल कादिर जीलानी रह० छठी सदी हिजरी में। तो फिर इमाम शाफई की किताब में उनका ज़िक्र किस तरह आ गया? यह कितना झूठ पर झूठ है फिर फारसी इबारत का अनुवाद भी गलत किया है। इसमें डबल गलती यह है कि "फातिहा चहलम नबी करीम सल्ल० करदा बूदन्द" का अनुवाद किया है कि चालीसवें का खत्म शरीफ हमेशा ग्यारह माह रबीउल आखिर को किया करते थे यद्यपि फारसी में "करदा बूदन्द" के मायना हमेशगी के नहीं। मालूम होता है कि मौलवी शरीफ को अरबी क्या फारसी भी नहीं आती। "करदा बूदन्द" का मायना है कि 'किया था' न कि 'हमेशा करते थे'। फिर इसमें यह भी एक झूठ है कि ग्यारहवीं को उर्स बना दिया यद्यपि उर्स साल के साल होता है और ग्यारहवीं हर माह होती है। जब इस किताब की बिस्मिल्लाह ही गलत है और झूठों का पुलिन्दा है तो बाकी को भी इसी

पर मान लें:

इसके बाद पृष्ठ पांच पर शैख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी की किताब "मा सब्त बिल सुन्नह" पृष्ठ 68 के हवाले से ज़िक्र किया है कि हमारे देश में ग्यारहवीं शरीफ का दिन मशहूर है और हमारे मशाइख जो पीर पीरान की औलाद से हैं के निकट परिचित मशहूर है।

जवाब

यह बात स्पष्ट है कि किसी बात के मशहूर होने से वह साबित नहीं होती। अरब में बुतों की पूजा मशहूर थी वे गैरूल्लाह की इबादत करते थे। बैतुल्लाह शरीफ में तीन सौ साठ बुत थे, इब्राहीम अलैहिस्सलाम और इस्माईल अलैहि० की तस्वीरें बना रखी थीं। उनके हाथों में किस्मत मालूम करने के फाल थे इसके बावजूद मिल्लते इब्राहीमी का दावा करते थे। रसूलुल्लाह सल्ल० ने फतह-ए-मक्का के मौके पर फरमाया कि खुदा उन लोगों को विनष्ट करे। उन लोगों ने उन पर तोहमत बांधी है। उन्होंने कभी भाग्य मालूम करने के लिए तीर इस्तेमाल नहीं किए। देखें बुखारी पहला भाग बाब 'वत्त-ख-ज़ल्लाहु इबराही-म खलीला' (पृ० 473) तो किसी बात का फैल जाना या मशहूर हो जाना कोई दलील नहीं। ईसाई भी तो कहते हैं कि मसीह अलैहि० हमारे गुनाहों के कफ्फारा में सूली चढ़ गए हैं। यद्यपि यह सफेद झूठ है। इसी तरह कुरआन मजीद पारा चौथा पहले रूकूअ में है। यहूद कहते हैं: 'इन्नल्लाह अहद इलैना...' (अलआयत)

अर्थात खुदा की तरफ से हमें वसीयत है कि हम किसी रसूल के लिए ईमान न लाएं जब तक वह हमारे पास कोई ऐसी कुर्बानी न लाए जिसको आग खा जाए। मतलब उनका यह था कि मुहम्मद सल्ल० ने हमें यह निशानी नहीं दिखाई। इसलिए हम उन पर ईमान नहीं लाते यद्यपि यहूद ने यह झूठ मशहूर कर रखा था। अल्लाह की तरफ से ऐसी कोई

वसीयत न थी। मतलब यह कि इस प्रकार के बहुत से झूठे किस्से मशहूर हो जाते हैं जिन पर कोई दलील नहीं। ऐसे ही ग्यारहवीं समझ लें।

इसके अलावा मा सब्त बिस्सुन्नह के अगले पृष्ठ पर इसका खंडन किया है। अतएव असल शब्द यह हैं:

अनुवादः ज़माना-ए-सल्फ़ में उर्स व ग्यारहवीं का नाम व निशान न था पिछले लोगों ने इसको अच्छा समझ लिया है।

हदीस में है सल्फ का ज़माना अच्छा ज़माना है। तो उनके तरीके के खिलाफ दीन में कोई नया काम दाखिल करना उसमें कभी भलाई नहीं हो सकती। चाहे लोग कुछ समझ लें। मौलवी मुहम्मद शरीफ को बेईमानी की आदत बहुत है। एक बात ज़िक्र कर जाते हैं और इसी जगह उसका खंडन होता है उसका नाम तक नहीं लेते। अफसोस!

ये ठहरे हैं अब दीन के रहनुमा
लकब उनका है वारिस अंबिया

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 6 पर मा सब्त बिस्सुन्नह पृ० 127 के हवाले से लिखा है कि शैख अब्दुल वहाब कादरी अपने उर्स में ग्यारहवीं तारीख का ख्याल रखते थे।

जवाब

यह सफेद झूठ और आरोप है। मौलवी मुहम्मद शरीफ इसी तरह झूठ बोल बोल कर लोगों को धोखा देते हैं। अगर हिम्मत है तो असल किताब से दिखाएं वरना ग्यारहवीं छोड़ दें। इसके अलावा शरीअत में अपनी तरफ से कोई तारीख निश्चित कर के उसकी हिफाज़त करना ही तो बिदअत है जो कि शरअन हराम है। अब्दुल वहाब बेचारे की क्या हैसियत है कि वह शरीअत में हस्तक्षेप करे। फिर उर्स तो साल के बाद होता है। ग्यारहवीं का इससे क्या संबंध है? यहां तक ग्यारहवीं का बयान खत्म

हुआ।

नतीजा यह निकला कि ग्यारहवीं बिल्कुल आरोप और झूठ है। और शरीअत में यह बिदअत और हराम है।

उर्स

इसके बाद इस पुस्तिका में शामी पहले भाग बाब ज़ियारतुल कुबूर के हवाले से उर्स का सुबूत पेश किया है। इब्ने अबी शीबा रह० से रिवायत है कि नबी-ए-करीम सल्ल० हर साल उहुद के शहीदों की कब्रों पर तशरीफ ले जाया करते थे। और तफ्सीर दुर्रे मन्सूर के हवाले से ज़िक्र किया है कि हुज़ूर सल्ल० हर साल उहुद के शहीदों की कब्रों पर जाया करते थे और फरमाया करते थे।

سلام علیکم بما صبر تم فنعم عقبی الدار (شامی جلداول)

अनुवादः "तुम पर सलाम हो इस कारण कि तुमने सब्र किया तो अच्छा है अंजाम घर का।"

और चारों खलीफे भी ऐसा ही करते थे।

जवाब

इस रिवायत की एक तो सनद का ज़िक्र नहीं किया। सहीह है या ज़ईफ है। इब्ने अबी शीबा ऐसी किताब है कि इसकी कोई रिवायत बिना मुहक्किक के लेनी जाएज़ नहीं। देखें उजाला नाफिआ पृ० लेखक शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब मुहद्दिस देहलवी मरहूम और तफ्सीर कबीर और दुर्रे मन्सूर इससे भी नीचे दर्जे की हैं। तो ऐसे हवालों से मसला साबित नहीं होता जब तक इसकी सेहत व कमज़ोरी बयान न

हो। दूसरे इसमें प्रचलित उर्स का कोई ज़िक्र नहीं। कब्रों की ज़ियारत का ज़िक्र है और इन पर सलाम डालने का ज़िक्र है जो मसनून तरीका है। कब्रों की सिर्फ ज़ियारत को कोई नहीं रोकता। न कोई इसमें मतभेद है अब भी हाजी लोग मस्जिदे नबवी की ज़ियारत करने को जाते हैं। वे शहीदों की कब्रों पर और जन्नतुल बकीअ और रोज़ाए मुबारक की साल के साल ज़ियारत[1] करते हैं मगर प्रचलित उर्स का नाम व निशान नहीं, न खैरूल कुरून से इसका सुबूत मिलता है तो इस रिवायत को उर्स मुरव्वजा[2] के सुबूत में पेश करना सरासर गलत है।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ सात पर शाह शरफुद्दीन के कथनों के हवाले से यह रिवायत ज़िक्र की है कि रसूलुल्लाह सल्ल० की वफात से ग्यारह दिन बाद जब हज़रत सिद्दीके अकबर रज़ि० खलीफा हुए तो बारहवें दिन आपने बहुत सा खाना पकवाया ताकि उसका सवाब हुज़ूरे अकरम सल्ल० की रूह की नज़र करें।

---

1. रसूलुल्लाह सल्ल० के साल के साल तशरीफ ले जाने की रिवायत अगर साबित हो जाए तो इसमें भी यही हिक्मत थी कि जो लोग साल के साल मदीना आते हैं वे उहुद के शहीदों की कब्रों की ज़ियारत से खाली न हो जाएं क्योंकि जन्नतुल बकीअ मस्जिदे नबवी के निकट है। इसकी ज़ियारत आसान है उहुद के शहीदों की तुलना में। वह कई मील बाहर है इस बिना पर इसमें सुस्ती का खतरा था तो आप सल्ल० ने साल के साल ज़ियारत का इसी तरफ ध्यान दिला दिया मानो साल के साल मसनून तरीका नहीं बल्कि मदीना आने वालों को ध्यान दिलाने के लिए है। वरना जन्नतुल बकीअ में भी साल के साल तशरीफ ले जाते उहुद वालों को खास क्यों किया?

2. प्रचलित उर्स में मेले की तरह चहल पहल होती है दूर दूर से दुनिया आती है अखट का आयोजन है मर्द व औरत बन ठनकर शामिल होते हैं जिससे कई तरह की बुराईयां और अशलीलता अस्तित्व में आती हैं बेपर्दगी का प्रदर्शन

होता है मुजरे और कव्वालियां होती हैं। कब्र को सज्दे होते हैं नज़रें नियाज़ें मांगी जाती हैं। चढ़ावे चढ़ाए जाते हैं मुरादें मांगी जाती हैं इसके खिलाफ मसनून ज़ियारत में सिर्फ मौत की याद होती है मौतों के लिए सलाम और दूआ होती है। कहां प्रचलित उर्स और कहां मसनून ज़ियारत।

जवाब

यह रिवायत बिल्कुल बोहतान और झूठ है। और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक रज़ि० पर आरोप है। किसी विश्वसनीय तारीख या हदीस की किसी विश्वस्त किताब में इसका नाम व निशान तक नहीं। ये लोग इसी तरह झूठी रिवायतें बना बना कर लोगों को बहकाते और गुमराह करते हैं। खुदा महफूज़ रखे। आमीन

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ आठ पर हज़रत शाह वलीउल्लाह रह० के नाम से लिखा है कि इसी कारण से है। मशाइख के उर्सों की हिफाज़त और उनकी कब्रों की ज़ियारत और फातिहा पढ़ना और सदका देना व आयोजन करना और उनके निशानात व औलाद की इज़्ज़त करना।

जवाब

शाह वलीउल्लाह साहब की किसी किताब का हवाला नहीं दिया। वैसे ही लिख दिया है। इसके अलावा शाह वलीउल्लाह साहब ने लोगों के काम करने का ज़िक्र किया है। और किसी के करने से कोई चीज़ जाएज़ नहीं हो जाती। जब तक शरअ से साबित न हो।

इसके बाद शाह अब्दुल कुद्दूस गंगोही के कथन का ज़िक्र किया है कि पीरों के उर्सों का सिलसिला मशाइख के तरीके पर सफाई और समाअ

से जारी रखें।

जवाब

अब्दुल कुद्दूस बेचारे की क्या हैसियत है कि शरीअत में दखल दें।

इसके बाद शाह अब्दुल अज़ीज़ रह० के फतावा अज़ीज़िया पृ० 111 के हवाले से लिखा है कि फकीर एक साल में दो मज्लिसें अपने घर में करता है। एक मज्लिस हुज़ूर अलैहिस्सलाम की वफात के ज़िक्र में। दूसरी हसनैन रज़ि० की शहादत के ज़िक्र में।

जवाब

मौलवी शरीफ को मालूम नहीं कि शाह वलीउल्लाह रह० और शाह अब्दुल अज़ीज़ रह० के घराने में पत्नी की सहनक[1] और इस प्रकार की और बिदअतें भी होती थीं जो कुछ बेगमात मुगलिया खानदान की जारी की हुई थीं और यह सर्व सहमति से बुरी हैं। जूं जूं कुरआन व हदीस की रौशनी उनके खानदान में आती गई इस प्रकार की बिदअतें निकलती गईं। उनके खानदान में विधवा की शादी भी नहीं करते थे। शाह इसमाईल शहीद रह० ने इस रस्म को मिटाया। विस्तार से जानने के लिए मरहूम सय्यद अहमद बरेलवी और शाह इसमाईल शहीद की आत्म कथाएं पढ़ें।

1.हज़रत फ़ातिमा रज़ि० के नाम से औरतों की आम दावत होती है जिसमें एक निकाह वाली शामिल होती हैं जिसका नूर जहां को शर्मिन्दा करना उद्देश्य था। क्योंकि उसका दूसरा निकाह था उसका नाम बीवी की सहनक था बीवी से तात्पर्य हज़रत फातिमा रज़ि० हैं शर्मिन्दा होने वाली बेचारी मर गई मगर बीवी की सहनक बराबर जारी रही।

इसके बाद इसी पुस्तिका के पृष्ठ 10 पर उसूल की किताबों के हवाले से लिखा है:

"المستحب ما احبه العلماء"

अर्थात मुस्तहब वह काम है जिसको उलमा प्रिय समझें।

जवाब

यह बिल्कुल बोहतान है उसूल की किताबों में यह कोई उसूल नहीं लिखा उसूल की किताबों में दलीलें कुल चार लिखी हैं। कुरआन, हदीस, इज्माअ और कयास। यह ज़ाहिर बात है कि ग्यारहवीं और उर्स पर न कुरआन व हदीस है और न इज्माअ है और न कयास है बल्कि मनगढ़त रिवायतें पेश की जा रही हैं जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है।

इसी पृष्ठ पर दो हदीसें लिखी हैं।

पहली हदीस:

"ماراٰه المومنون حسنا فهو عند الله حسن" (۱)

अर्थात जिस काम को मोमिन अच्छा जानें वह अल्लाह के निकट भी अच्छा है।[1]

दूसरी हदीस:

"لاتجمع امتی علی الضلالة"

मेरी उम्मत का इज्माअ गुमराही पर नहीं हो सकता।

1. यह हदीस नहीं हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० का कथन है देखिए मकासिद हसना लिल सख़ावी।

जवाब

ये दोनों रिवायतें इज्माअ की दलील हैं लेकिन ग्यारहवीं और उर्स पर सिर्फ बरेलवियों का अमल है, जो शिर्क व बिदअत में डूबे हुए हैं। इज्माअ कहां?

इसके बाद पृष्ठ ग्यारह पर देवबन्दियों को आरोप दिया है कि उनके निकट ग्यारहवीं (कुरआन पढ़ा हुआ हो या सदका) हराम है। और हिन्दुओं की हाथ की पकी हुई मिठाई और कचौरियां और पूरियां उनके खास निर्धारित त्योहारों की तोहफा के तौर पर निःसन्देह जाएज़ है।

(फतावा रशीदिया हिस्सा अव्वल, पृ० 95 व दूसरा भाग, पृ० 132)

जवाब

फिक्ह की किताबों में कुफ्फार के त्यौहारों का सम्मान हराम लिखा है। फिर उलमा-ए-देवबन्द तोहफा के तौर पर उन मिठाइयों को जाएज़ किस तरह कह सकते हैं। अगर किसी को भूल लग गई हो तो खुदा माफ करे।

बिदअत और उसकी किस्में

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 12 पर बिदअत की बहस लिखी है एक बिदअते हसना (अच्छी बिदअत) होती है और एक सय्यिअह (बुरी)।

जवाब

शरअ में बिदअते हसना का वजूद ही नहीं क्योंकि हदीस में साफ शब्द आए हैं "कुल्लु बिदअतिन ज़लालतिन" अर्थात हर बिदअत गुमराही है। हां शाब्दिक मायना की दृष्टि से बिदअते हसना हो सकती है। हज़रत उमर रज़ि० ने तरावीह को कहा "नेमतुल बिदअतिन हाज़ा" अर्थात यह अच्छी बिदअत है यद्यपि रसूले अकरम सल्ल० ने तीन दिन पढ़ाई थीं तो फिर बिदअत न हुई लेकिन मुद्दत तक चूंकि बन्द रहीं और हज़रत उमर रज़ि० ने उनको नए सिर से जारी किया तो इस लिहाज़ से आपने शाब्दिक मायनों में नज़र करते हुए उनको बिदअत कहा और यही इस हदीस के मायना हैं जो मिश्कात शरीफ बाबुल इल्म के हवाल से मौलवी मुहम्मद शरीफ ने इस पुस्तिका में ज़िक्र की है किः

"من سن فی الاسلام سنة حسنة فله اجرها (الحديث)

अर्थात जो इस्लाम में अच्छा तरीका जारी करे उसके लिए उसका सवाब है, और जो उस पर अमल करें उनका भी सवाब है। बिना इसके कि उनका सवाब कम हो।

अर्थात जो तरीका शरअ में साबित हो उसको नए सिरे से जारी करे तो उस पर सवाब है। इसका अधिक स्पष्टिकरण निम्न हदीस से होता है।

عن بلال بن الحارث المزنی قال قال رسول اللهﷺ من احییٰ سنة من سنتی قد امیتت بعدی فان له من الا جر مثل اجور من عمل بها من غیر ان ینقص من اجورهم شیئا و من ابتدع بد عة ضلالة لا یر ضاها الله و رسوله کان علیه من الاثم مثل أثام من عمل بها لاینقص ذلك من اوزارهم شیئا۔ رواه الترمذی و رواه ابن ماجه عن کثیر بن عبد الله بن عمر و عن ابیه عن جده۔ (مشکوة، باب الاعتصام بالکتاب والسنة ص ۳۰)

अनुवादः हज़रत बिलाल बिन हारिस रज़ि० से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने फरमाया, जो व्यक्ति मेरी सुन्नत से कोई सुन्नत जो मेरे बाद मुर्दा हो गई हो ज़िंदा करे उसके लिए उन लोगों के सवाबों के जैसा है जो उस पर अमल करें बिना इसके कि उनके सवाबों से कुछ कमी करे। और जो व्यक्ति गुमराही की बिदअत आरंभ करे (जिसका शरअ में सुबूत न हो) जिसको खुदा और उसका रसूल सल्ल० पसन्द नहीं करते, होगा उस पर गुनाह उन लोगों के गुनाहों जैसा जो उस पर अमल करें साथ उसके, नहीं कम करेगा यह उनके गुनाहों से कुछ। इसको तिर्मिज़ी रह० ने रिवायत किया और इब्ने माजा रह० ने कसीर बिन अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ि० के बयान से बयान किया। कसीर रह० ने अपने बाप से सुना। बाप ने कसीर के दादा (औफ) से सुना।

इस हदीस में स्पष्टिकरण है कि जो कोई मुर्दा सुन्नत को ज़िंदा करे जिसका शरअ में वजूद था उसके लिए सवाब है और उसके मुकाबले में बिदअत ज़लालत वह होगी जिसको खुदा और रसूल सल्ल०

पसन्द नहीं करते, जिसका शरअ में वजूद ही न हो वह हसना हो ही नहीं सकती, हां जिसका शरअ में वजूद हो और वह मुर्दा हो चुकी हो। उसको नए सिरे से ज़िंदा करे वह शाब्दिक रूप से हसना हो सकती है जैसे तरावीह की मिसाल दी गई है।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ पंद्रह पर लिखा है कि खत्म ग्यारहवीं में कोई बुरी चीज़ नहीं।

जवाब

जब यह बिदअत हुई तो स्वयं ही बुरी हो गई। क्योंकि हदीस में है:

"کل بدعة ضلالة"

अर्थात हर बिदअत गुमराही है।

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ१६ पर अहयाउल उलूम लेखक इमाम गज़ाली के हवाले से लिखा है किः

"ان الا فرادالمباحات اذك أجتمعت کان ذلك المجموع مباحا۔"

अर्थात जब कई मुबाह चीज़ें इकट्ठी हो जाएं तो संग्रह भी मुबाह ही होगा।

जवाब

मौलवी मुहम्मद शरीफ बेचारे को मालूम नहीं कि मुबाह और चीज़ है और मुस्तहब और चीज़ है। मुस्तहब वह चीज़ है जिस पर सवाब मिले। और मुबाह वह चीज़ है जिस पर न सवाब है न अज़ाब। ग्यारहवीं मुस्तहब बल्कि ज़रूरी समझकर की जाती है इसलिए यह

बिदअत है जो हराम है और अगर चावल, पुलाव, गोश्त, रोटी, कोरमा, फीरीनी आदि इकट्ठे करके खा लिए जाएं तो जैसे अकेले अकेले जाएज़ और मुबाह हैं ऐसे ही मिलकर भी जाएज़ और मुबाह है। मुहम्मद शरीफ को आता तो कुछ भी नहीं बेकार में एक बड़े मसले का सुबूत देने बैठ गए। हां संयोगवश कई मुस्तहिबात इकट्ठे हो जाएं जैसे एक समय में नफिल भी पढ़ ले। मिस्कीन को खाना खिला दे। बीमार का हाल भी पूछ ले आदि इसको कोई मना नहीं करता मगर जब उस संग्रह को मसला बना लिया जाए और इकट्ठा करने को मसनून की तरह बनाकर प्रोत्साहन दिया जाए तो यह दीन में बिदअत है अतएव किताब दारमी पहले भाग पृ०68 पर हदीस है।

"اخبرنا الحكم ابن المبارك انا عمر بن يحيىٰ قال سمعت ابى يحدث عن ايبه قال كنا نجلس على باب عبد الله بن مسعود قبل صلوٰة الغداة فاذا اجرج مشينا معه الى المسجى فجاء نابو موسىٰ الا شعرى فقال اخرج ليكم ابو عبد الرحمٰن بعد قلنا لا فجلس معنا حتى خرج فلما خرج قمنا اليه المسجد أنفاً امراً انكرته ولم ار والحمدلله الا خيرا قال فما هو فقال ان عشت فتراه قال رأيت فى المسجد قوما حلقاًجلوساً ينتظرون الصلاة فى كل حلقة رجل وفى ايديهم حصىً فيوقول كبَروا مائة فيكبرون مائة فيقول هللوا مائة فيهللون مائة، يقول سحوا مائةفيسبحون مائة قال فما ذاقلت لهم قال ماقلت لهم شيّا انتظار رأيك اوانتظار امرك قال افلا امرتهم ان يعدوسيا تهم وضمنت لهم ان لا يضيع من حسناتهم شئى ثم مضى و مضينا معه حتىٰ اتى حلقة من تلك الحلق فوقف عليهم

فقال ماهذا الذى اركم تسنعن قالوا يا ابا عبدالرحمٰن حصى نعد به التكبير و التهليل والتسبيح قال فعد وا سيّا تكم فانا ضا من ان لا يضيع من حسنا تكم شئى ويحكم يا امة محمد ما اسرع هلكتكم هئو لاء صحابة نيكم ﷺ متو افرون وهذه ثيابه لم تيل وانبته لم تكسروالذى نفسى بيده انكم على ملة هى اهدى من ملة محمع او مفتتحوا باب ضلالة قالواولله ياب عبدالرحمن ما اردنا الا لخير قال و كم من مريد للخير لن يصيبه۔ ان رسول الله ﷺ حدثنا ان قومايقرؤن القرآن لا تجاوزترا فيهم وايم الله مادرى لعل اكثر هم منكم ثم تو لىٰ عنهم فقال عمرو بن سلمه رأيت عامة اولئك يطاعنونا يوم النهروان مع الخوارج۔

(سنن دارمى، جلد اول س ٦٨)

अनुवादः उमर बिन याहया कहते हैं कि मैंने अपने बाप से सुना वह अपने बाप से बयान करते थे कि हम सुबह की नमाज़ से पहले अब्दुल्ललाह बिन मसऊद रज़ि० के दरवाज़े पर बैठते। जब वह अन्दर से निकलते तो उनके साथ मस्जिद को जाते। हमारे पास अबू मूसा अशअरी रज़ि० आए कहा क्या अबू अब्दुर्रहमान (अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० की उपाधि है) अभी तक नहीं निकले? हमने कहा नहीं। अबू मूसा भी हमारे साथ बैठ गए। जब अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० निकले तो हम सब उनकी तरफ उनके साथ जाने के लिए आ खड़े हुए। अबू मूसा अशअरी रज़ि० ने कहा, ऐ अबू अब्दुर्रहमान मैंने मस्जिद में एक नई चीज़ देखी है मगर अलहम्दुलिल्लाह भलाई ही देखी है। अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने फरमाया, वह क्या है। कहा, अगर आप ज़िंदा रहे तो स्वयं ही देख लेंगे। फिर अबू मूसा अशअरी

रज़ि० ने कहा, मैंने मस्जिद में एक कौम हल्के बनाकर बैठी देखी है वे नमाज़ का इंतज़ार करते हैं। हर हल्के के बीच एक व्यक्ति है उसके हाथों में कंकर हैं तो (बीच वाला) कहता है सौ बार अल्लाहु अकबर पढ़ो। तो वे सौ बार अल्लाहु अकबर पढ़ते हैं। फिर कहता है सौर बार ला इला-ह-इल्लल्लाहु पढ़ो तो वे सौ बार ला इला-ह-इल्लल्लाहु पढ़ते हैं। फिर कहता है कि सौ बार सुब्हानल्लाह पढ़ो तो वे सौ बार सुब्हानल्लाह पढ़ते हैं। अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने फरमाया तूने उनको क्या कहा? कहा, मैंने कुछ नहीं कहा। आपकी राय या हुक्म का इंतिज़ार है। फरमाया तूने उनको यह हुक्म क्यों न दिया कि अपनी बुराइयां गिनें (अर्थात यह ज़िक्र नेकियां नहीं बल्कि बुराइयां गिन रहे हैं) और मैं ज़िम्मेदार हूं कि उनकी कोई नेकी बर्बाद न होगी (मतलब यह है कि बन्दा तो ज़िम्मेदारी ले नहीं सकता तो नेकियां सब बर्बाद गईं) फिर अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० चले और हम भी उनके साथ चले यहां तक कि उन हल्कों में से एक हल्के पर आए। उन पर खड़े हो गए। फरमाया यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, ऐ अबू अब्दुर्रहमान रज़ि० कंकरों के साथ तकबीर, तहलील, तस्बीह पढ़ते हैं। अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने फरमाया, अपनी बुराइयां गिनो। तुम्हारी नेकियों का मैं ज़िम्मेदार हूं कि कोई बर्बाद नहीं होगी। ऐ उम्मते मुहम्मदिया सल्ल०! तुम्हें खराबी हो। तुम्हारा विनष्ट होना कितना निकट है, अभी सहाबा-ए-किराम अधिकता से मौजूद हैं। रसूलुल्लाह सल्ल० के कपड़े पुराने नहीं हुए। आपके बर्तन नहीं टूटे (फिर व्यंग करते हुए फरमाया) खुदा की कसम जिसके हाथ में मेरी जान है, बेशक तुम जिस दीन पर हो वह दीन मुहम्मदी से ज़्यादा हिदायत वाला है। क्या गुमराही का दरवाज़ा खोलने वाले हो? उन्होंने कहा, खुदा की कसम ऐ अबू अब्दुर्रहमान! हमारा सिर्फ भलाई का इरादा है। फरमाया, कितने भलाई

का इरादा करने वाले भलाई को कदापि नहीं पहुंचेगें। रसूलुल्लाह सल्ल० ने हमें हदीस सुनाई है कि एक कौम कुरआन पढ़ेगी लेकिन वह उसकी हसलियों से नीचे नहीं उतरेगी। खुदा की कसम मैं नहीं जानता कि शायद उन लोगों के बहुत से तुममें से हों फिर वे उनसे फिर गए (अर्थात वापस हो गए) अम्र बिन सलमा रज़ि० फरमाते हैं कि बहुत से उन लोगों के हमने देखे कि खारजियों के साथ शामिल होकर नहरवान के दिन (जबकि हज़रत अली रज़ि० के साथ खारजियों की जंग हुई) हमारे साथ जंग करते थे।

इस हदीस पर सोच विचार करें कि उसमें कौन सी चीज़ बुरी है उंगलियों पर ज़िक्र करना हदीस में यद्यपि बेहतर आया है मगर कंकर भी अपने में बुरी चीज़ नहीं। अबू हुरैरह रज़ि० कंकरियों पर ज़िक्र करते थे। जैसे मंको की तस्बीह आदि लेकिन छुपाकर रखे क्योंकि उसमें दिखावे का दखल ज़्यादा है। अतएव मौलाना अब्दुल जब्बार गज़नवी मरहूम ऐसा ही करते थे। और मौलाना सय्यद नज़ीर हुसैन उस्तादुल कुल देहलवी रह० भी तस्बीह इस्तेमाल करते थे। (देखिए अलहयात बाअदल ममात बाब वफात, पृ० 414) और नमाज़ से पहले ज़िक्र करना भी कोई बुरी चीज़ नहीं। ज़िक्र हर समय सही है चाहे नमाज़ से पहले करे या बाद और ज़िक्र के लिए हल्के भी कोई बुरी चीज़ नहीं। रात दिन पठन पाठन होते हैं। शार्गिद उस्ताद हल्के बनाकर बैठते हैं। और तकबीर, तहलील और तस्बीह तीनों का ज़िक्र करना आगे पीछे भी कोई बुरी चीज़ नहीं बल्कि हदीसों में इसके साथ अलहम्दुलिल्लाह भी आया है। हां सौ बार की गिनती नहीं आई। सौ की संख्या अपनी तरफ से निर्धारित करना और उन सारी चीज़ों के संग्रह को एक मसला बना लेना और बिला ज़रूरत हल्का बनाकर एक आदमी का बीच में बैठना। क्योंकि पठन पाठन के समय तो ज़रूरत होती है कि सारे शार्गिद एक अंदाज़ पर उस्ताद के निकट हों। अपने तौर पर ज़िक्र करने के लिए न हल्के की ज़रूरत है न एक का बीच में बैठकर कहने की

ज़रूरत है। तो इस प्रकार की बातों को जमा करके एक खास आकृति के साथ ज़िक्र चूंकि शरीअत में साबित नहीं था। इस बिना पर अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने उन पर गुमराही का फतवा लगाया। इसी तरह अब भी जो व्यक्ति अपनी तरफ से इस प्रकार की बातें दीन में दाखिल करेगा और लोगो को उसके करने की शिक्षा देगा तो वह बिदअत और हराम काम करने वाला होगा। चाहे वज़ाइफ़ इस प्रकार के करे या उर्स ग्यारहवीं या चहलम साठा आदि करे ये सब बिदआत और गुमराही हैं। दारमी के इसी भाग के पृ० 69 पर अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० से रिवायत किया है कि:

"اتبعوا ولاتبتدعوا فقد كفيتم"

अनुवादः पहलों का अनुसरण करो नई बात बिल्कुल न निकालो। क्योंकि तुम्हारी किफालत हो चुकी है। अर्थात तुम्हें नई बातें निकालने की ज़रूरत नहीं।

क्या शरीअत ने किसी प्रकार की कमी छोड़ी है जो तुम नई नई बातें ईजाद करते हो? तो उस पर भरोसा करो जो पहले लोगों ने किया।

मतलब यह कि दीन में किसी प्रकार का दखल नहीं। यह खुदा और रसूल की चीज़ है जो इसमें दखल देगा वह बिदअती है जिस पर लानत आई है। न उसका नफिल कुबूल है न फर्ज़ बल्कि रसूलुल्लाह सल्ल० भी अपनी तरफ से कुछ नहीं कर सकते। कुरआन में है: "इनिल हुकमु इल्ला लिल्लाहि" (सूरह यूसुफः रूकूअ 5) अर्थात हुक्म सिर्फ अल्लाह ही के लिए है। रसूलुल्लाह सल्ल० ने अपने ऊपर शहद हराम किया सूरह तहरीम में अल्लाह तआला ने आपको डांटा:

﴿يا ايها النبى لم تحرم ما احل الله لك (الآية)﴾

"ऐ नबी तू क्यों हराम करता है उस चीज़ को जो अल्लाह

तआला ने तेरे लिए हलाल की, क्या तू पत्नियों की खुशी चाहता है।"

कैसी ज़बरदस्त डांट है। खुदा जाने ये लोग कितने साहसी हैं कि खुदा के दीन में हस्तक्षेप करते हैं। और अल्लाह तआला ने डांट दिया तो हमारा क्या हाल होगा। खुदा तआला महफूज़ रखे। आमीन सुम्मा आमीन

इसके बाद इस पुस्तिका में पृष्ठ 16 पर लिखा है:

कुछ कह देते हैं जी हम ग्यारहवीं सावधानी हेतु मना कर देते हैं यह (ऐसी सावधानी) अल्लाह पर आरोप है। उनको शामी की इस इबारत पर सोच विचार करना चाहिए:

"ليس الا حتياط فى الافتراء على الله تعالىٰ باثبات الحرمة والكراهة الذين لا بد لهما من دليل بل فى قول بالا جابة التى هى اصل فى الاشياء وقد توقف النبى ﷺ مع انه هو المشرع فى تحريم الخبائث حتى انزل عليه النص القطعى-"

अनुवादः सावधानी इसमें नहीं कि किसी काम को जिस पर शरअी दलील न हो हराम या मक्रूह कह दिया जाए यह तो अल्लाह तआला पर आरोप है बल्कि सावधानी इसी में है कि मुबाह कहा जाए कि जो चीज़ों में असल है स्वयं हुज़ूर सल्ल० ने बावजूद यह कि आप शारेअ हैं। शराब ऐसी चीज़ को जो उम्मुल खबाइस अर्थात तमाम खबासतों की मां है हराम फरमाने में संकोच फरमाया यहां तक कि खुदा का हुक्म आया।

जवाब

मौलवी मुहम्मद शरीफ ने जिन लोगो का यह कथन नकल किया है। वे अपरिचित लोग हैं। ग्यारहवीं पूरी तरह हराम है। सावधानी हेतु मना करने का क्या मतलब है।

ईसाले सवाब

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ सत्तरह पर ईसाले सवाब का ज़िक्र किया है।

जवाब

ईसाले सवाब का मसला आम सहमति का है। हां बिदअत के तरीके पर ईसाले सवाब नहीं होता बल्कि मसनून तरीके पर होता है। जैसे आम तौर पर दुनिया सदका खैरात करती है।

फिर इसी पृष्ठ पर हज़रत इब्राहीम अलैहि० रसूल सल्ल० के बेटे की वफात के तीसरे दिन तीसरा करने की रिवायत लिखी है और हवाला मुल्ला अली कारी के फतवा का दिया है।

जवाब

यह बिल्कुल झूठ और बोहता न है। अगर हिम्मत है तो उसका सुबूत दो। झूठी बातें बनाकर लोगो को धोखा देना यह बिदअतयों का काम है। खुदा इससे बचाए।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 19 पर मिश्कात शरीफ बाबुल फितन के हवाले से हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० की रिवायत लिखी है कि कौन है जो मस्जिदे इशा में चार रकाअत नमाज़ पढ़े और कहे "इसका सवाब अबू हुरैरह रज़ि० के लिए है।"

इसी तरह मिश्कात बाबुस्सदका 'के हवाले से हज़रत साअद रज़ि० की रिवायत लिखी है कि एक कुआं खुदवाया और उसका सवाब साअद रज़ि० की मां के लिए कर दिया।

जवाब

इसका कोई भी इन्कारी नहीं कि कोई भला काम करके उसका सवाब किसी को पहुंचा दिया जाए। हां शारीरिक इबादत में झगड़ा है। इमाम शाफई रह० कहते हैं कि शारीरिक का सवाब नहीं पहुंचता आर्थिक का पहुंचता है। इमाम अबू हनीफा रह० और इमाम अहमद रह० फरमाते हैं कि शारीरिक व आर्थिक दोनों का पहुंचता है। इमाम मालिक रह० से दो रिवायतें हैं। एक में है कि पहुंचता है और एक में है कि नहीं। बहर हाल मसनून तरीका होना चाहिए जिसका शरीअत में सुबूत हो, न कि बिदअती तरीका और अपना ईजाद किया हुआ।

इसके बाद इस पुस्तिका में शाह वलीउल्लाह रह० की किताब "अल इंतिबाह फी सलासिल औलिया" के हवाले से खत्म आदि का ज़िक्र किया है। यद्यपि हम पृष्ठ 9-10 में बतला चुके हैं कि शाह वलीउल्लाह रह० के खानदान में शुरू में कुछ बुरी रस्में मौजूद थीं जो धीरे-धीरे मिट गईं।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 20 पर ज़बदतुन्नसाइह पृ० 132 के हवाल से फातिहा ख्वानी का ज़िक्र किया है। और हाजी इमदादुल्लाह मुहाजिर मक्की के हवाले से ग्यारहवीं और इस प्रकार की और बिदअतों का ज़िक्र किया है।

जवाब

न कोई कुरआन व हदीस से सुबूत पेश किया है और न इज्माअ और कयास से।

दिनों का निर्धारण

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 21 पर दिनों के निर्धारण के सुबूत के लिए कुरआन मजीद की यह आयत पेश की है "व ज़क्किरहुम बिअय्यामिल्लाह" (सूरह इब्राहीमः रूकूअ 1)

अर्थात अल्लाह के दिनों के साथ उनको उपदेश करो कि फलां दिन अल्लाह तआला ने तुम पर यह इनाम किया।

जवाब

इस आयत का ग्यारहवीं, बीसवीं, चहलम, शमशाही से दूर का संबंध भी नहीं वह तो इसी प्रकार का उपदेश है जैसे अल्लाह तआला कुरआन मजीद में हमें उपदेश करते हैं।

﴿وَلَقَدْ خَلَقْنَاكُمْ ثُمَّ صَوَّرْنَاكُمْ ثُمَّ قُلْنَا لِلْمَلَائِكَةِ اسْجُدُوا لِآدَمَ﴾

"हमने तुम्हें पैदा किया फिर तुम्हारी सूरतें बनाईं। फिर हमने फरिश्तों को कहा कि आदम को सज्दा करो।"

इस प्रकार के उपदेश कुरआन मजीद में अधिकता से मौजूद हैं। दिन निश्चित करने का कोई नाम व निशान नहीं न ग्यारहवीं न बारहवीं न तेरहवीं। क्या इस प्रकार की आयतों को उतारने के लिए अल्लाह ने ग्यारहवीं निश्चित की थी? नहीं बल्कि ज़रूरत पड़ने पर उतरती थीं। जिसको उतरने का उद्देश्य कहते हैं। फिर सारी दुनिया कुरआन मजीद पढ़ती है और उपदेश करती है। इसमें किसी का मतभेद नहीं। हां बरेलवियों ने जो नया तरीका ग्यारहवीं आदि का

ईजाद कर रखा है यह बिदअत और हराम है।

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 22 पर कंजुल उम्माल चौथे भाग पृष्ठ 227 के हवाले से आशूरा के दिन (दसवीं मुहर्रम) का ज़िक्र किया है।

"ان عاشوراء يوم من ايام الله"

अर्थात आशूरा का दिन अल्लाह के दिनों में से है।

क्योंकि इस दिन अल्लाह तआला ने (मूसा अलैहि० के लिए) दरिया को फाड़ा। और इसी दिन आदम अलैहि० की तौबा कुबूल हुई। और इसी दिन नूह अलैहि० की कश्ती जूदी पहाड़ पर ठहरी।

जवाब

हदीस शरीफ में इस दिन का रोज़ा मसनून है। इससे एक साल के गुनाह माफ होते हैं लेकिन यह दिन हमने स्वयं निश्चित नहीं किया बल्कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने निश्चित किया है तो इस पर क्या आपत्ति? इसी तरह जो दिन कुरआन और हदीस में निश्चित है। उन पर किसी को आपत्ति नहीं। उन पर अमल होना चाहिए।

फिर इस पुस्तिका के इसी पृष्ठ पर लिखा है ये सारे दिन अंबिया के इनामों के हैं। यहां तक कि अल्लाह ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम और हज़रत याहया अलैहि० के जन्म दिन और मौत के दिन की भी विशेषता फरमाई है।

जवाब

यह सफेद झूठ है किसी आयत व हदीस में नहीं आया कि इन दिनों को मनाओ। उनमें उपदेश दो या खाना खिलाओ बल्कि क़ुरआन

व हदीस में यह भी ज़िक्र नहीं कि ये कौन से दिन हैं।

इसके बाद इस पुस्तिका में लिखा है। अगर इंसाफ से देखा जाए तो कोई ऐसा अमल नहीं जो निर्धारण के सिवा होता हो। हम ग्यारहवीं शरीफ के विरोधियों से पूछते हैं कि जब अहादीस-ए-नबविया से दिन निश्चित करके नमाज़-ए-इस्तिसका पढ़ना और सफर के दिन निश्चित करना और दिन निश्चित करके मुसलमानों की दावत करना और मसाकीन व गरीबों को खाना खिलाना, खास दिनों में सूरतों का पढ़ना और रोज़े रखना तमाम बाते पूरी तरह साबित हैं फिर दिन निश्चित करके ग्यारहवीं शरीफ की फी सबीलिल्लाहि नियाज़ को किस दलील से नाजाएज् कहते हो। इसके अलावा तमाम फराइज़-ए-इस्लामिया नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात आदि निश्चित दिन और समय पर ही अदा किए जाते हैं।

जवाब

जो दिन या समय आदि खुदा और रसूल सल्ल० ने निश्चित किए हैं वे तो दीन में दाखिल हैं और उन पर अमल करना ठीक ठीक इबादत है। जैसे अभी आशूरा का बयान हुआ है। इनके अलावा हमारा अपनी तरफ से दिन या समय निश्चित करना दो तरह का होता है। एक यह कि व्यक्तिगत तौर पर अपनी ज़रूरत के तहत कोई दिन निश्चित कर लिया जाए जैसे किसी को इतवार के दिन फुरसत होती है तो वह इतवार इतवार दर्स दे या किसी जगह जलसा या तकरीर की ज़रूरत होती है तो यथा अवसर तारीख तय कर दी जाती है ताकि लोग आ सकें। इसी तरह जब बारिश की नमाज़ व दुआ के लिए बाहर निकलते हैं तो एक दिन का ऐलान कर देते हैं। चाहे कोई दिन हो ताकि लोग जमा हो सकें। और हमेशा के लिए एक दिन टिका हुआ

नहीं होता ऐसे ही जब किसी को दावत की गुंजाइश होती है तो जिन लोगों की दावत करता है उनको समय बतला देता है। इस प्रकार का निर्धारण दीन में दाखिल नहीं। क्योंकि यह ज़रूरत पड़ने पर होता है। इसलिए सबके लिए एक दिन नहीं होता बल्कि कोई इतवार निश्चित करता है तो कोई सोमवार तय कर लेता है। अर्थात कोई जुमेरात तय करता है तो कोई जुमा। अतएव हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० जुमा का दिन आने से पहले मिम्बर के पास खड़े होकर हदीसें सुनाते क्योंकि उस समय लोगों का इज्तिमाअ[1] होता जो जुमा पढ़ने के लिए आते।

1. देवबन्दी आदि जुमा को पहली अज़ान के बाद अपनी ज़बान में उपदेश देते हैं। फिर दूसरी अज़ान के बाद अरबी ज़बान में खुत्बा पढ़ते हैं कुछ मुद्दत से उन्होंने यह बिदअत जारी कर रखी है पहले अरबी खुत्बा की जगह अपनी ज़बान में उपदेश देते थे और पहली अज़ान के बाद कोई उपदेश नहीं था। और इस बिदअत पर विवेचन हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० के इस अमल से करते हैं यद्यपि अबू हुरैरह रज़ि० के इस अमल से इसका कोई संबंध नहीं क्योंकि अबू हुरैरह रज़ि० का यह अमल संयोग से अस्थाई चीज़ है। असल बात यह है कि अबू हुरैरह रज़ि० के पास हदीसों का भंडार सब सहाबा किराम रज़ि० से ज़्यादा था सिवाए अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ि० के। क्योंकि वह लिखना जानते थे और अबू हुरैरह रज़ि० का आधार सिर्फ़ स्मरण शक्ति पर था। अबू हुरैरह रज़ि० इस इज्तिमाअ को गनीमत समझ कर इमाम के आने से पहले मिम्बर के पास अपनी हदीसें सुनाते ताकि ज़ब्त हो जाए (जैसे तरावीह में कुरआन मजीद सुनाने से पुख्ता हो जाता है) और इसी के साथ लोगों को मसाइल का ज्ञान भी हो जाए इसलिए यह नहीं कहा कि उपदेश देते बल्कि हदीसें सुनाने का ज़िक्र किया है इस उपदेश के विपरीत जो पहली अज़ान के बाद होता है। यह मात्र उपदेश है और मकसद इससे यह है कि लोग दूसरी मस्जिदों में न चलें जाएं क्योंकि खुत्बा उनके यहां गैर अरबी में सही नहीं और लोग अरबी ज़बान समझते नहीं इसलिए पहले अपनी ज़बान में उपदेश देते हैं फिर

अरबी खुत्बा पढ़ते हैं और इसका इतना महत्व हो गया है कि सारे देश में यह तरीका प्रचलित है जैसे एक मुस्तकिल मसला सरआी होता है हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० के अमल के विपरीत। वह इत्तिफाकिया चीज़ थी न वह मुस्तकिल उपदेश था और न ही उसका आम रिवाज था बल्कि इत्तिफाकिया अपनी ज़रूरत के तहत अबू हुरैरह रज़ि० ने यह काम किया। इसलिए न अबू हुरैरह रज़ि० इस पर कायम रहे और न सहाबा-ए-किराम में यह सिलसिला जारी हुआ। मसला मामूली से हेर फेर से कुछ का कुछ बन जाता है जैसे खाना इसलिए खाएं कि जीखाने पीने के लिए है तो यह अपराध है और अगर इसलिए खाकि जीवन कायम रहे और जीवन खुदा की इबादत के लिए है तो यह खुदा की ठीक इबादत है।
ऐसा ही अमल अबू हुरैरह रज़ि० और प्रचलित उपदेश को समझ लें। शामी पहला भाग पृष्ठ 507-524 में सलात रगाइब को जो मेराज के महीना (रजब) में लोग पढ़ते हैं बिदअत लिखा है और उससे मना किया है। वजह इसकी यह लिखी है कि लोगों ने इसको बड़ा महत्व दिया है और आम रिवाज पड़ गया है यहां तक कि जमाअत के साथ पढ़ते हैं जैसे कोई वाजिब काम होता है और हंफिया की किताबों में लिखा है कि वस्तु की किस्म बदलने से हुक्म बदल जाता है। ऐसे अबु हुरैरह रज़ि० के अमल की वह किस्म नहीं जो प्रचलित उपदेश की है तो फिर इस से विवेचन क्योंकर सही होगा।

इसके अलावा अबु हुरैरह रज़ि० का अमल गैर इमाम का अमल है जो वह समय खाली देखकर बिना मिम्बर के करता है प्रचलित उपदेश के विपरीतयहां दो उपदेश सामान्यता एक इमाम के मिम्बर पर होते हैं एक अरबी में और एक अपनी ज़बान में है। तो उसकी पाबन्दी और उसका आयोजन बिदअत हैर औ सल्फ के तरीके के बिल्कुल खिलाफ है क्योंकि उन्होंने दूसरे देश फतह होने के बावजूद ऐसा नहीं किया। हंफिया खुत्बा गैर अरबी में सही न होने की बड़ी दलील यही पेश करते हैं कि दूसरे देश के फतह होने के बावजूद और ज़रूरत के बावजूद गैर अरबी में नहीं हुआ। इसलिए गैर अरबी में सही नहीं तो हम पूछते हैं कि उन्होंने ज़रूरत के बावजूद गैर अरबी में इस तरह से दो उपदेशो का सिलसिला जारी किया? एक अरबी में दूसरी अज़ान के बाद और एक गैर अरबी में पहली

अज़ान के बाद। तनिक सोचना चाहिए और अपने पांव आप कुल्हाड़ी नहीं मारनी चाहिए। फिर यहां एक और बाद विचारणीय है वह यह कि हंफिया किताबों (हिदाया आदि) में लिखा है कि एक आयतें करीमा "इज़ा नूदि-य-लिस्सलातिमिं यौमिल जु-मुअति फसअव इला ज़िकरिल्लाहि"का संबंध पहली अज़ान से है अर्थात अल्लाह तआला का फरमान "जब जुमा के दिन अज़ान हो जाए तो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ दौड़ो। इससे पहली अज़ान तात्पर्य है। तो पहली अज़ान होते ही अपना कारोबार छोड़कर अल्लाह के ज़िक्र के लिए फौरन जाना चाहिए। और यह बात स्पष्ट है कि रसूलुल्लाह सल्ल० के ज़माने से लेकर हज़रत उस्मान रज़ि० की खिलाफत तक इस आयत का संबंध खुत्बा वाली अज़ान से था जो अब दूसरी अज़ान कहलाती हैं क्योंकि पहले एक ही अज़ान थी। फिर हज़रत उस्मान रज़ि० ने एक और बढ़ा दी जिसको अब पहली कहते हैं तो जैसे यह आयत पहली अज़ान के साथ लग गई ऐसे ही इस आयत में जिसमें ज़िक्र की तरफ दौड़ने का हुक्म है वह पहला उपदेश बन गया अबू हुरैरह रज़ि० के अमल के विपरीत वह इस आयत के तहत आता ही नहीं तो फिर इस पर इस उपदेश को किस तरह क़यास कर सकते हैं अल्लाह तआला उन लोगों को समझ दे जो बात सोच कर नहीं करते:

जो कहना है सो कहिए लेकिन समझ कर मर्द नोमानी
समझ है खास आदम पर बड़ा इनाम रहमानी

और मिश्कात किताबुल इल्म पहली फस्ल पृष्ठ २३ में है कि अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० जुमेरात को उपदेश देते। एक व्यक्ति ने कहा कि मैं दोस्त रखता हूं कि आप हर दिन हमें उपदेश दिया करें। फरमाया मैं अच्छा नहीं समझता तुम्हार जी उक्ताऊ (क्योंकि जल्दी जल्दी उपदेश से इंसान का जी उक्ता जाता है मैं तुम्हारी इस तरह निगरानी करता हूं जिस तरह रसूलुलाह सल्ल० जी उक्ताने के डर से हमारी निगरानी करते थे)

मतलब यह कि हालात के तहत जैसा मौका होता है वैसे कर

लिया जाता है हमेशा के लिए कोई टिका हुआ दिन नही होता न हमेशा के लिए कोई एक महीना निश्चित होता है न हमेशा महीने की कोई तारीख निश्चित होती है।

दूसरी किस्म यह है कि कोई दिन तय कर लिया जाए। जैसे हर माह की ग्यारहवीं या मय्यत का दसवां, बीसवां, चहलम आदि और सारी दुनिया को उसकी तर्गीब दी जाए कि यह दिन मनाओ और इसमें फलां फलां काम करो। जैसे एक शरऑ मसला होता है और उसको भला काम समझा जाता है। और इस पर सवाब की उम्मीद रखी जाती है। यह किस्म बिदअत और हराम है। रसूलुल्लाह सल्ल० फरमाते हैं:

"من احدث فی امر نا هذا ما ليس منه فهورد"

अर्थात जो हमारे दीन में नया काम पैदा करे जो उसमें नहीं वह मर्दूद है। (मिश्कात बाबुल ऐतिसाम पहली फस्ल पृष्ठ 27)

हां कोई अपने पीर साहब या अपने किसी बुज़ुर्ग की तरफ से कुर्बानी करे या हज आदि करे या बिना निश्चित दिन के या तारीख के किसी मिस्कीन को खाना खिला दे या किसी छात्र को किताब ले दे या कपड़ा बना दे या किसी गरीब का कर्ज़ उतार दे या किसी विधवा औरत या यतीम बच्चे के साथ सद व्यवहार कर दे या सदका जारिया कर दे, मस्जिद या सराए बना दे या जन कल्याण के लिए कुआं खुदवा दे और नीयत कर ले कि उसका सवाब फलां बुज़ुर्ग या फलां मय्यत को पहुचें तो उसमें किसी का मतभेद नहीं। यह शरीअत में साबित है। इसके विपरित कि अपनी तरफ से दिन निश्चित करना या खाना तय करना कि खीर ही हो या हलवा ही हो या फलां चीज़ हो। इस प्रकार के निर्धारण बिदअत हैं बल्कि जिस प्रकार की किसी को ज़रूरत हो

1- हदीसों में सूरतो की प्रमुखता आई है शायद फुकहा को वे हदीसें नहीं पहुंचीं या कोई और वजह होगी खुदा सुन्नत पर चलाए और उसी पर खात्मा करे। आमीन।

इसका ध्यान रखे। भूखे को खाना दे। नंगे को कपड़ा पहनाए। कर्ज़ वाले का कर्ज़ा उतार दे आदि। अपनी तरफ से एक बंधन यह दीन में हस्तक्षेप है और बिदअत है, जो हराम है।

कुछ लोग ईद की सिवय्यों पर भी आपत्ति करते है। मगर आपत्ति करने वाले ईद की हकीकत को नही समझते। ईद का दिन अल्लाह तआला की तरफ से दावत का दिन निश्चित है। इसीलिए इस रोजा रखना मना है ग्यारहवी बारहवीं आदि अल्लाह की तरफ से कोई दावत का दिन नहीं । और जब ईद का दिन अल्लाह तआला की तरफ से दावत का हुआ तो उस दिन घर वाले जो अपनी स्वेच्छ से पकाएंगे चाहे सिवय्यां हों या चावल या फीरीनी या हलवा गोश्त पुलाव आदि हो यह सब अल्लाह की तरफ से घर वालो। और जब अल्लाह की तरफ से दावत हुई तो यह बन्दे की तरफ से सदका खैरात की किस्म से न हुआ जो सवाब के लिए करता है तो ईद पर अपने निश्चित दिनों को कयास करना ईद की हकीकत से अनभिज्ञता है। अल्लाह तआला समझ दे और गुमराही से बचाए। आमीन ।

चेतावनी

मौलवी मुहम्मद शरीफ कभी कभी अपना खंडन आप ही कर जाते हैं मगर उनको पता नहीं लगता, उपरोक्त उल्लिखित इबारत में खास दिनों में सूरतों का पढ़ना बयान किया है यद्यपि फिक्ह की किताबों में लिखा है कि सूरतों को प्रमुख नहीं समझना चाहिए जैसे जुमा की सुबह की नमाज़ में सूरह सज्दा और सूरह दहर ही पढ़ना और जुमा की नमाज़ में सूरह आला और सूरह गाशिया या सूरह जुमा और सूरह मुनाफिकून को खास करना, यह मना है। मौलवी मुहम्मद

शरीफ बताएं कि इसमें कोई बुराई नहीं तो आपके निकट यह बिदअत हसना हुई फिर फुकहा ने इसको मना क्यों किया? इसके अलावा और सुनिए। इमाम हमवी अशबाह वन्नज़ाइर की व्याख्या में लिखते हैं:

''النبی ﷺ قال لا تخصو الیله الجمعة بقیام من بین البیالی۔ رواه مسلم فاذا نهی هذه اللیه فغیر ها با لمنع اولیٰ لان التخصیص بدعة۔ (اص ۳۸۵)

अनुवाद : नबी-ए-करीम सल्ल० ने जुमा की रात को इबादत के लिए खास करने से मना फरमाया है। जब जुमा की रात को प्रमुख समझना शरअन सही नहीं तो किसी और दिन की प्रमुखता कैसे सही होगी क्योंकि प्रमुख समझना बिदअत है।

इससे मालूम हुआ कि दीन में कोई बिदअेत हसना नहीं है बल्कि हर बिदअत गुमराही है। तो इसी तरह ग्यारहवीं बारहवीं को समझ लें। उम्मीद है कि अब मौलवी मुहम्मद शरीफ साहब ग्यारहवीं का नाम नहीं लेंगे। अल्लाह सौभाग्य प्रदान करे और हिदायत दे। आमीन

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 23 पर बुखारी शरीफ के हवाले से हज़रत सहल रज़ि० की एक रिवायत बयान की है। सहल कहते हैं कि:

''एक औरत हर जुमा को चुकन्दर और जौ के आटे से हमारी दावत किया करती थी।

जवाब

यह दावत इस प्रकार की है जैसे दावत करने वाले दावत के लिए एक दिन निश्चित कर देते हैं क्योंकि जुमा के दिन जुमा पढ़ने के लिए लोग आते थे जिनमें गरीब गुरबा भी होते। वह औरत उनकी

दावत कर देती ताकि भूखे न जाएं। न कि यह दिन सरअ में था है अगर सरअ में तय होता तो और भी उसी पर अमल करते। इसलिए यह उसी औरत पर खत्म हो गया। मालूम हुआ कि यह कोई सरअी चीज़ नहीं।

इसके बाद इसी पुस्तिका में हाजी इमदादुल्लाह मुहाजिर मक्की रह० के हवाले से लिखा है कि ग्यारहवीं आदि का दिन निश्चित करने में तनिक ख्याल रहता है कि फलां समय यह काम करना है वैसे ख्याल नहीं आता।

जवाब

इसका जवाब यह है कि इसी का नाम तो बिदअत है मुसलमान का काम है कि जब तौफीक हो अल्लाह के रास्ते में दें न कि किसी दिन का इंतिज़ार करें जिसका खुदा व रसूल सल्ल० ने हुक्म नही दिया।

फिर इसी पुस्तिका के पृष्ठ चौबीस पर शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब देहलवी रह० के फतावा अज़ीज़िया के हवाले से लिखा है कि उर्स का दिन इसलिए निश्चित किया जाता है कि वह उनके लिए यादगार होगा।

जवाब

ऐसी यादगारें कायम करना जो शरअ में बिदअत हों जाइज़ नहीं, उन बुजुर्गों की किताबें और उनके कारनामे उनकी यादगारें हैं। वे पढ़ें और उन पर अमल करें। आद कौम ऐसी यादगारें मनाती थी तो हूद अलैहिस्सलाम ने उनको डांटा और फरमाया :

﴿اتبسون بکل ربع آیة تعبشون﴾

''क्या तुम हर टीले पर निशान निर्माण करते हो (यह) बेकार काम करते हो।''

बाकी रहा शाह अब्दुल अज़ीज़ का हवाला तो इससे पहले हम पृष्ठ 12 में लिख चुके हैं कि शाह वलीयुल्लाह और शाह अब्दुल अज़ीज़ के खानदान में शुरू में कई बिदअतें थीं जो आखिर में मिट गईं। तो बार बार उनके हवाले देना बेकार है।

फिर इसी पुस्तिका में पृष्ठ 24 पर एक हदीस लिखी है कि :

"اخب الا عمال الى الله ادو مها" (الحديث)

अर्थात अल्लाह को वह अमल पसन्द है जो हमेशा हो।

जवाब

इस हदीस से मौलवी मुहम्मद शरीफ ने अपना ही खंडन कर दिया क्योंकि जो अमल हमेशा होगा उसके लिए दिन तय करने की ज़रूरत नहीं हां शरअ ने दिन तय किया हो तो निर्धारित समय पर चाहिए।

इसके बाद इस पुस्तिका में शैख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी की किताब मा सब्त बिस्सुन्नह पृष्ठ 96 के हवाले से कुछ बाद वालों का कथन बयान किया है कि जिस दिन बुज़ुर्ग वफात पाते हैं उस दिन ज़्यादा भलाई व बरकत की उम्मीद होती है

जवाब

बाद वालों का यह कथन बिल्कुल मनगढ़त है। शरीअत में इसका कोई सुबूत नहीं है।

इसके बाद पृष्ठ 25 रिवायतों के संग्रह के लेखक के हवाले से लिखा है कि किसी बुज़ुर्ग की मौत के दिन आत्माएं आती हैं। तो उस

दिन की दावत का खास ख्याल रखना चाहिए।

जवाब

यह मात्र अपनी अटकल है, आत्माओं के आने का शरीअत में कोई सुबूत नहीं, न उस दिन की दावत का सुबूत है। और रिवायतों का संग्रह अपनी मनगढ़त रिवायतों का संग्रह है।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 26 में फिर शाह अब्दुल अज़ीज़ का कथन बयान किया है कि वह अपने बाप का हर साल उर्स करते थे।

(बहवाला ज़बदतुन्नसाइह फी मसाइल ज़बाइह पृ० 42)

जवाब

इसका कई बार जवाब हो चुका है। उनके खानदान में शुरू में ऐसी गलतियां थीं जो बाद में खत्म हो गईं।

फिर इसी पुस्तिका के पृष्ठ 27 में उम्मत के इज्माअ का बयान किया है और बहवाला ज़बदतुन्नसाइह फी मसाइल ज़बाइह पृष्ठ 42 लिखा है कि शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब फरमाते हैं कि फातिहा आदि पर उलमा का इज्माअ है।

जवाब

सारी दुनिया जानती है कि इज्माअ तो क्या शरीअत में इसका नाम व निशान तक नहीं अतएव विवरण ऊपर गुज़र चुका है।

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 27 में लिखा है कि कुछ लोग ग्यारहवीं को गैरूल्लाह की नज़र व नियाज़ कहते हैं और गैरूल्लाह की

नज़र व नियाज़ हराम है। अतएव कुरआन मजीद में है कि:

"वमा उहिल्ल बिही लि-गैरिल्लाहि" मौलवी मुहम्मद शरीफ इसका जवाब देते हैं कि इस आयत में ज़बह के समय गैरुल्लाह का नाम तात्पर्य है और ग्यारहवीं को जो शाह अब्दुल कादिर जीलानी रह० की तरफ निस्बत करते हैं तो यह ऐसा है जैसे कहते हैं तेरी भैंस, अकबर की बकरी, मौलवी साहब की पत्नी, मेरे कपड़े तो क्या सब हराम हो गए।

जवाब

अगर ऐसा होता तो जैसे भैंस बकरी मालिक के काम आती है और पत्नी से मौलवी साहब लाभ उठाते हैं। ऐसे ही ग्यारहवीं पीर साहब खाते जबकि ग्यारहवीं मौलवी मुहम्मद शरीफ आदि खा जाते हैं तो फिर यहां भैंस बकरी पत्नी आदि की मिसाल कैसे सही होगी?

इसके अलावा मौलवी मुहम्मद शरीफ ने दो तरह से धोखा दिया है, एक यह कि आयत को ज़बह के साथ खास किया जबकि बुज़ुर्गों ने इसके मायना आम भी किए हैं (और सही आम ही हैं क्योंकि कुरआन मजीद में ज़बह की कोई कैद नहीं) देखें तफ्सीर कबीर आदि। अतएव हमने इस बारे में एक मुस्तकिल किताब लिखी है जिसका नाम "वमा उहिल्ल बिही लि-गैरिल्लाहि" है।

दूसरा धोखा यह दिया है कि इसको तेरी भैंस, तेरी बकरी पर कयास किया है जबकि ग्यारहवीं की हुरमत की वजह और है। वह यह कि तय किया जाना, खाने के बावजूद सवाब की नीयत से किया जाता है और दिन भी अपनी तरफ से निर्धारण किया है जिसका शरअ में कोई सुबूत नहीं। अकबर की बकरी, तेरी भैंस के लिए न तो कोई दिन

तय है और न यह सवाब की नीयत से किया जाता है बल्कि ग्यारहवीं की हुरमत की एक और बड़ी वजह यह भी है कि लोग डरते हुए ग्यारहवीं देते हैं कि कहीं पीर नाराज़ होकर कोई हानि न पहुंचाए यह बहुत बड़ा शिर्क है अल्लाह इससे बचाए। आमीन सुम्म आमीन।

आखिरी फैसला

इनमें सन्देह नहीं कि जिनके नाम की ग्यारहवीं दी जाती है अगर वे ग्यारहवीं पर नाराज़ हों तो ग्यारहवीं सवाब का काम नहीं बल्कि वबाले जान है यह एक ऐसा अटल फैसला है कि इसके होते हुए इधर उधर जाने की ज़रूरत नहीं। ऐकेश्वरवादी विद्वानों को अल्लाह तआला भलाई प्रदान करे कि उन्होंने हर पहलू से मसला ग्यारहवीं पर रौशनी डाली। यहां तक कि ग्यारहवीं वाले पीर साहब से भी इस बात का सुबूत दिया कि ग्यारहवीं जाएज़ नहीं अब कोई ग्यारहवीं से बाज़ न आए तो फिर उसका मामला खुदा के सुपुर्द। अल्लाह तआला अपने रसूल को फरमाते हैं:

﴿إِنَّكَ لَا تَهْدِى مَنْ أَحْبَبْتَ وَلَٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِى مَنْ يَّشَاءُ﴾

(پ۲۰ع۹)

अर्थात (ऐ मुहम्मद सल्ल०) तू नहीं कर सकता जिसको दोस्त रखे तू लेकिन खुदा जिसको चाहे हिदायत करता है।

इस बात का सुबूत कि ग्यारहवीं वाले पीर साहब के निकट ग्यारहवीं जाएज़ नहीं। उसके लिए मौलाना अब्दुल कुद्दूस साहब गुड़गान्वी (नाज़िम दारूल हदीस मुहम्मदिया कोट राधा किशन लाहौर) का निम्न लेख पढ़िए और अपनी तसल्ली क़ीजिए। यह लेख तंज़ीम पत्रिका अहले हदीस में भी हैं लेकिन महत्वपूर्ण चीज़ इसमें ग्यारहवीं के मानने वालों के लिए पीर साहब का इर्शाद है।

शाह जीलानी रह० और ग्यारहवीं

आदरणीय पाठको! हज़रत महबूब सुब्हानी शैख अब्दुल कादिर जीलानी रह० छठी सदी हिजरी के वह महान बुज़ुर्ग हैं कि जिनकी पाक ज़ात से उम्मते मुहम्मदिया को काफी लाभ पहुंचा है। हम शाह जीलानी रह० और तमाम औलिया अल्लाह को अल्लाह तआला के भले बन्दे और बुज़ुर्ग मानते हैं। उनकी मुहब्बत को ईमान का अंश समझते हैं और उनकी शान में आलोचना करने वाले को अल्लाह तआला का दुश्मन समझते हैं लेकिन औलिया अल्लाह की मुहब्बत कासही पैमाना यही है कि किताब व सुन्नत की रौशनी में उनका अनुसरण किया जाए और जिन चीज़ों से उन बुज़ुर्गों ने मना किया है उनसे रूका जाए और उसके अलावा मुहब्बत का कोई पैमाना निश्चित करना सही नहीं। हज़रत ईसा बहुत बड़े पैगम्बर हुए हैं मुसलमान उनको अल्लाह तआला का पाक रसूल और रूहुल्लाह मानते हैं मगर ईसाइयों ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की प्रशंसा में इतनी अतिश्योक्ति की है कि उनको इब्नुल्लाह (अल्लाह का बेटा) बना दिया। अब अगर कोई मुसलमान हज़रत ईसा को इब्नुल्लाह (अल्लाह का बेटा) न कहे तो ईसाई उस पर हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के अपमान का फतवा लगा देते हैं और कहते हैं कि मुसलमान हज़रत ईसा के दर्जे को घटाते हैं। ठीक यही हाल हद से बढ़ जाने वाले हज़रात का है कि अगर कोई व्यक्ति उनके गढ़े हुए अकीदा को न माने तो उस पर औलिया अल्लाह के अपमान का फतवा लगा देते हैं।

ग्यारहवीं मानने वाले

"ग्यारहवीं" मनाने की यह वजह बयान करते है कि यह हजरत शाह अब्दुल जीलानी रह० क दिन है और विसाल का दिन मनाना जाएज है यह एक ऐसा दावा है जिसकी पुष्टि कुरआन व हदीस, सहाबा और इमाम व मुज्तहिदीन के अमल से नहीं होती। अगर इस्लाम में विसाल का दिन मनाने की इजाज़त होती तो हज़रत नबी-ए-करीम सल्ल० अंबिया किराम के विसाल की यादगार मनाते या सहाबा किराम हज़रत सैय्यदुल अंबिया सल्ल० के विसाल के दिन की यादगार मनाते मगर न आपने ऐसा किया और न सहाबाए-किराम ने और न इमामों ही ने ऐसी यादगार मनाने की इजाज़त दी है। बल्कि स्वयं शाह जीलानी रह० ने विसाल के दिन की यादगार मनाने को नाजाएज़ करार दिया है। आप फरमाते हैं:

"لو جاز ان يتخذ يوم موته يوم مصيبة لكان يوم الاثنين
اولىٰ بذلك اذك قبض الله تعالىٰ فيه نبيه محمعدا ﷺ و كذلك
ابو بكراصديق فيه ثم لو جاز ان يتخذ هذا اليوم مصيبة لا
تخذه الصحابة والتابعون لا نهم اقرب اليه و اخص يه.

(غنية الطالبين)

"अगर इमाम हुसैन की शहादत के दिन को रंज व गम का दिन मनाना जाएज़ होता तो यह बहुत ही मुनासिब था कि पीर के दिन को बहुत ही रंज व गम का दिन तय किया जाता क्योंकि इस दिन ही हज़रत नबी-ए-करीम सल्ल० और हज़रत अबू बक्र रज़ि० ने वफात पायी है। मगर न यह जाएज़ है न वह। और अगर यह चीज़ जाइज़ होती तो सहाबा किराम और ताबईन पीर के दिन को रंज व गम का

दिन तय कर लेते क्योंकि सबसे ज़्यादा हज़रत नबीए-करीम सल्ल० के करीब और आपके साथ खास संबंध रखने वाले यही बुजुर्ग थे।"

पाठक गणो! आपने देखा कि स्वयं पीराने पीर रह० किसी की वफात के दिन यादगार मनाना नाजाएज़ ठहराते हैं। पीर साहब के इस फरमान से आप के विसाल के दिन ग्यारहवीं मनाना भी नाजाएज़ हो गया।

शाह जीलानी की वफात की तारीख

आपकी वफात की तारीख में इतिहासकों ने बहुत ही मतभेद किया है। कोई रबीउस्सानी की आठ तारीख बताता है कोई नौ। कोई दस कोई ग्यारह और कोई सत्तरह। फिर इस पर मज़े की बात यह है कि हमारे यहां पर ग्यारहवीं हर महीने में मनायी जाती है और फिर उसमें कुछ ऐसे काम भी अंजाम भी दिए जाते हैं कि जो अल्लाह तआला के लिए खास है। नज़र व नियाज़ आर्थिक इबादत है और तमाम इबादतों का हकदार सिर्फ अल्लाह तआला ही है। "अत्तहिय्यातु लिल्लाहि वस्सलावातु वत्तय्यिबातु" (मुत्ताफिक अलैहि) तमाम ज़बानी, शारीरिक और आर्थिक इबादते सिर्फ अल्लाह ही के लिए है।

याद रहे कि ग्यारहवीं को पीर साहब की नियाज़ के तौर पर मनाया जाता है और अगर सवाब पहुंचाने के तौर पर मनायी जाए तो इसमें तारीख के निर्धारण की ज़रूरत नहीं। सवाब पहुंचाना हर फरीक के नज़दीक सही है।

ग़ालियों (हद से गुज़रने वाले) के तर्क और उनके जवाब

ग़ाली (हद से गुज़रने वाले) लोगों ने पीर साहब रह० की ग्यारहवीं के जाएज़ होने में कुछ तर्क भी दिए हैं जिनमें उन्होंने तरह तरह के अर्थापन से काम लिया है उनको आपकी सूचना के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

﴿والفجر وليال عشر والشفع والوتر﴾ (ب٣٠)

कसम है फज्र की और दस रातों की और जुफ्त (युग्म) की और ताक (विषम) की।

कुछ गालियों ने इस आयत से ग्यारहवीं की कसम तात्पर्य ली है।

जवाब

इस आयत से किसी भी टीकाकार ने ग्यारहवीं तात्पर्य नहीं लिया। कुरआन शरीफ की टीका अपनी राय से करना बहुत बड़ा गुनाह है बल्कि अपनी राय से टीका करने वाले को रसूले खुदा सल्ल० ने जहन्नमी करार दिया है।

आपने फरमया :

"من قال فی القرآن برأیه فلیتبوء مقعده من النار"

(ترمذی)

जो व्यक्ति अपनी राय से कुरआन में कुछ कहे तो उसका ठिकाना जहन्नम है।

अपने ग़लत दृष्टिकोण की मज़बूती के लिए इस आयत को गलत और बे मौका इस्तेमाल करना कुरआन शरीफ की खुली दुश्मनी है। आज अल्लाह की पाक किताब ऐसे ही लोगों से खिताब कर रही है:

आइए इस आयत की टीका स्वयं हज़रत नबी-ए-करीम सल्ल० की ज़बानी सुनायी। आप फरमाते है:

अश्र से तात्पर्य ईदुल अज़्हा के दस दिन हैं। और वित्र से तात्पर्य अरफा का दिन और शफअ से तात्पर्य कुरबानी का दिन है।

(मुसनद अहमद)

और मौलवी नईमुद्दीन साहब बरेलवी इस आयत की टीका में हज़रत इब्ने अब्बास रज़ि० का कथन नकल करते हैं कि:

"उनसे तात्पर्य ज़िल हिज्जा की पहली दस रातें हैं क्योंकि यह ज़माना हज के कर्मों में व्यस्त होने का है और हदीस शरीफ में इस अशरा की बहुत श्रेष्ठता आयी है। और जुफ्त (युग्म) से तात्पर्य स्त्रष्टि और ताक (विषम) से तात्पर्य अल्लाह तआला है।" (देखे अनुवाद कुरआन शरीफ मौलाना अहमद रज़ा खां बरेलवी)

